लघु शोध परियोजना : सारांश

राजस्थानी भाषा पर संस्कृत का वर्चस्व : एक समीक्षात्मक अध्ययन

प्रस्तावित लघु शोध परियोजना के कार्य को पूर्ण करने व विषय सामग्री हेतु विभिन्न ग्रंथागारों, पुस्तकालयों से संपर्क कर ग्रंथों की सूची तैयार की गई तथा संबंधित सामग्री का संकलन किया गया। लघु शोध परियोजना विषय ''राजस्थानी भाषा पर संस्कृत का वर्चस्व : एक समीक्षात्मक अध्ययन'' को पांच भागों में विभक्त किया गया है। प्रथम अध्याय में राजस्थानी भाषा का सामान्य परिचय, द्वितीय अध्याय में शब्द–सम्पदा विवेचन, तृतीय अध्याय में राजस्थानी व संस्कृत भाषा में वर्णित छन्दों का विवेचन, चतुर्थ अध्याय में राजस्थानी व संस्कृत भाषा में वर्णित अलंकार योजना का साम्य विवेचन तथा पंचम अध्याय राजस्थानी व संस्कृत भाषा में प्राप्त समान रसाभिव्यक्ति का वर्णन से संबंधित है।

साहित्य के क्षेत्र में संस्कृत को निर्विवाद रूप से समस्त भाषाओं की जननी माना गया है। हमारे संस्कारों में जन्मकाल से लेकर मरण पर्यन्त तक देववाणी संस्कृत का प्रयोग आवश्यक है। हमारे आदर्श वाक्य जैसे– 'सत्यमेव जयते नानृतम' 'अहिंसा परमो धर्म' 'वीरभोग्या वसुन्धरा' 'सर्वे भवन्तु सुखिनः' इत्यादि संस्कृत भाषा में ही हैं। संस्कृत भाषा न केवल जीवित है अपितु अपनी शक्ति से राष्ट्र के जीवन को पुष्पित करती है, इसमें किसी भी प्रकार का संदेह नहीं है। संस्कृत ही एक ऐसा सूत्र है जिस सूत्र में प्रत्येक भाषा समान रूप से ओत–प्रोत दिखाई देती है।

सृष्टि के साथ ही भाषा की उत्पत्ति भी परमेश्वर के द्वारा सम्भव प्रतीत होती है, क्योंकि कोई भी ज्ञान बिना भाषा के प्रदान नहीं किया जा सकता। वेदों का ज्ञान भी ऋषियों के अन्तःकरण में ईश्वर ने भाषा के साथ ही प्रदान किया। अतः वैदिक भाषा सर्वाधिक प्राचीन होने के साथ ही ईश्वर प्रदत्त और सृष्टि की अथवा मनुष्यों की मूल भाषा कही जा सकती हैं। संस्कृत भाषा का प्रादुर्भाव वैदिक भाषा से ही हुआ है, क्योंकि संस्कृत साहित्य सर्जना की अखिल धारा वैदिक काल से अद्यावधि प्रवाहमान है। मनुष्य के भाव विचारों की धारा महाकाल में भाषा के कूलों से प्रवाहित होकर चलती है। कूल छूटता जाता है, धारा अपनी अविच्छिन्न प्राणगति से आवश्यकतानुसार नये कूल बनाती पुरस्पर होती रहती है। भाषा के अनियंत्रित वेग के कारण जब हम भाषा के अपरिचित घाट पर पहूँचते हैं, तब उससे संस्कृत जीवन के ज्ञानामृत का पान नहीं कर पाते हैं। अतः इसमें अनेक रूपता परिलक्षित होती है।

संस्कृत भाषा के असंख्य शब्द विकृतरूप हिन्दी, अंग्रेजी, उर्दु, जर्मनी, राजस्थानी आदि भाषाओं में मिलते हैं। राजस्थानी भाषा के अनेक शब्दों का संस्कृत भाषा के शब्दों से साम्य प्रतीत होता है। अध्ययन से ज्ञात होता है कि भारतीय आर्य भाषाओं के समान राजस्थानी भाषा की उत्पत्ति का मूल स्रोत संस्कृत भाषा में किया जाता है। राजस्थानी भाषा का कलेवर संस्कृत के समान विस्तृत तथा अगम्य है। इसमें संस्कृत वाड्.मय की विभिन्न विद्याओं का समावेश परम्परागत रूप से किया गया है। शब्द सम्पदा, वाक्य रचना शैली, गद्य–पद्य रचना विधान,चम्पू काव्य परम्परा,कोशपरम्परा, सूक्ति विधान, छन्द अलंकार नियोजन, शब्दशक्ति, रस–भाव आदि का समावेश राजस्थानी भाषा में यथावत निर्वाह किया गया है।

सीमित लेखन की प्रतिबद्धता के कारण प्रस्तुत लघु शोध परियोजना में शब्द सम्पदा, छन्द, अलंकार एवं रसाभिव्यक्ति का विवेचन किया है।

शोध के प्रथम से पंचम चरण प्रकरण पर्यन्त क्रमश : राजस्थानी भाषा का परिचय, शब्द सम्पदा, छन्द अलंकार तथा रसों का विवेचन करते हुए ज्ञात होता है कि ये विधाएँ संस्कृत भाषा से अनवरत राजस्थानी में अवतरित हुई हैं। शब्द–कोश भाषा की शब्द सम्पदा के संग्रहाक एवं संम्पादक होते हैं। शब्द साम्य को प्रदर्शित करने हेतु 'संस्कृत–हिन्दी–शब्दकोश' तथा राजस्थानी हिन्दी शब्द–कोश' का सापेक्ष अध्ययन कर ऐसे शब्दों का संकलन किया गया है जो राजस्थानी भाषा के लोक–प्रचलित शब्द हैं, जिनकी उत्पत्ति संस्कृत शब्द से हुई है। राजस्थानी भाषा मौलिकता बनाए रखने के लिए संस्कृत के शब्दों का रूप परिवर्तित कर दिया गया है। यह परिवर्तन संस्कृत शब्दो में राजस्थानी प्रत्यय लगाकर, अन्त्य स्वर लुप्त या ह्रस्व करके तथा अन्य भाषागत विशेषताओं के आधार पर किया गया है।

छन्दोबद्ध काव्य परिपुष्ट साहित्य का परिचायक होता है। संस्कृत 'छन्द शास्त्र' के प्रणेता ऋषि 'पिंगल' है। उनकी कृति–'पिंगल छन्दशास्त्र' है, इसी आधार पर राजस्थानी साहित्य में 'पिंगल शब्द' छन्द शास्त्र' के अर्थ में रूढ़ हो गया है। डिंगल भाषा के मर्मज्ञों ने अपने साहित्य में छन्द शास्त्र को महत्व दिया जिसके फलस्वरूप उच्च कोटि के मौलिक छन्द ग्रथों की (रघुनाथ रूपक गीता रो, रघुवर जस प्रकास) रचना की गई। मरूभाषा के विद्वानों ने कुछ संस्कृत छन्दों को ज्यों का त्यों अपना लिया और उनमें अपनी भाषा की रचना की। यहाँ भी कही छन्द नाम बदलकर अपना गण–योजना में परिवर्तन करके यथा संम्भव भाषा की मौलिकता की रक्षा की गई है। मानव सृष्टि को स्वरूच्यानुसार अधिक रमणीय बनाने हेतु अक्षुण्ण प्रयासरत है, तथैव स्वकृति की निरवद्य एवं मनोज्ञ रचना के लिए प्राकृतिक अथवा कृत्रिम अलंकरणों का उपयोग यथा स्थान करता रहा है जिस प्रकार सौन्दर्यासक्ति मानव हृदय का प्राकृतिक गुण है उसी प्रकार विभिन्न भाषी साहित्यकारों का भी प्रधान गुण है।

काव्य यद्यपि स्वयंमेव सौन्दर्यपोषक है तथा उत्कृष्ट काव्य प्रतिपादन हेतु जिस तत्त्व का उपयोग किया जाता है वही काव्यालंकार है। राजस्थानी तथा संस्कृत सहित्य में अंलकार विभाजन, नामकरण एवं अंलकार नियोजन की परम्परा में पूर्णरूपेण समानता परिलक्षित होती है। संस्कृत साहित्य के अलंकारों का प्रयोग राजस्थानी साहित्य में निर्बाध रूप किया गया है। रसास्वादन काव्य का प्रमुख प्रयोजन माना गया है। आचार्य भरतमुनि ने सर्वप्रथम अपने नाट्य–शास्त्र में श्रृंगारादि नव रसों का विवेचन किया है। श्रीविश्वनाथ ने साहित्य दर्पण में वत्सल–रस को स्वतंत्र स्वीकृति प्रदान की है। अन्य अलंकार शास्त्री नव रसों में ही इसको अन्तर्युक्त मानते हैं। राजस्थानी काव्य में भी उक्त दस रसों का विधान प्राप्त है। स्पष्ट है कि रस परम्परा भी संस्कृत साहित्य से ही राजस्थानी साहित्य में अवतरित हुई है।

(डॉ. राजेश कुमार बैरवा)
सहायक आचार्य –संस्कृत (P.I.)
राजकीय महाविद्यालय, बून्दी (राज.)